ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 299-301

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

मानवाधिकार : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

संगीता यादव

अस्टिेण्ट प्रोफेसर– समाजशास्त्र विभाग, नेताजी सुबाषचन्द्र बोस पी०जी० कालेज देवगाँव, आजमगढ़ (उ0प्र0), भारत

Received- 19.07.2020, Revised- 21.07.2020, Accepted - 23.07.2020 E-mail: hemantkumarasthana1955@gmail.com

सारांश : ***मानवाधिकार का अभिप्राय –व्यक्ति अपने सामाजिक प्रार्ण के रूप में स्थापित किया है, तब से अपने व्यक्तित्व और विकास के प्रति जागरूक होता गया। अमेरिकी स्वाधीनता की घोषणा इसी के आधार पर हुयी कि, "सभी मनुष्य जन्म से समान हैं, उनके जन्मदाता या सृजनकर्ता ने उन्हें कुछ अपरक्राम्य अधिकार (Inalienable Rights) प्रदान किये हैं, इनमें जीवन, स्वतन्त्रता तथा सुख की साधना का अधिकार सम्मिलित है (Life Liberty, and Pursuit of Happines)। मानव तथा नागरिकों के अधिकारों की फ्राँसीसी घोषणा के अन्तर्गत भी ऐसे अधिकारों का दावा किया गया जो प्राकृतिक, अहार्य तथा अपरक्राम्य (Natural, Impresceriptible and Inalienable) है।" दूसरे शब्दों में, ये अधिकार स्वयं प्रकृति की देन है, कोई इनका हरण नहीं कर सकता और यह किसी दूसरे को हस्तान्तरित नहीं किये जा सकते।***

कुंजीभूत शब्द– मानवाधिकार, अभिप्राय, सामाजिक, स्थापित, व्यक्तित्व, विकास, जागरूक, स्वाधीनता,घोषणा।

आज के वैश्वीकरण युग में मानवाधिकार की संकल्पना एक आदर्श प्रतिबिम्ब के रूप में हमारे सामने आती है। यह इसकी व्यापकता का ही द्योतक है कि, जहाँ नागरिक अधिकार ऐसे अधिकार है, जो किसी राज्य के नागरिक को केवल नागरिकता के आधार पर ही प्राप्त होता है तथा जिन्हें कानून के द्वारा सुरक्षित किया जाता है, दूसरे शब्दों में नागरिक अधिकारों का सिद्धान्त जाति, लिंग, धर्म, भाषा, संस्कृति, क्षेत्र इत्यादि के आधार पर बहुमत और अल्पमत के समान अधिकारों की सुरक्षा की माँग करता है, वहीं मानवाधिकार ऐसे अधिकार हैं, जो प्रत्येक मनुष्य को केवल मनुष्य होने के नाते प्राप्त होते हैं, चाहे इसके लिये उपयुक्त कानूनी व्यवस्था की गयी हो या न की गई हो। वास्तव में, सभ्य मनुष्य अपनी तर्कबुद्धि, अन्तरआत्मा की प्रेरणा से मनुष्य मात्र की विशेष गरिमा को मान्यता देते हैं और यही विचार मानवाधिकारों की अवधारणा का मूल स्त्रोत है। हमारी चेतना और सामाजिक चेतना जितनी विकसित होती जायेगी मानवाधिकारों का क्षेत्र उतना ही विकसित होता जायेगा। आधुनिक समय में मानवाधिकार का सबसे पहले प्रयोग अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने जनवरी 1941 में कांग्रेस को सम्बोधित अपने संदेश में किया था। मानवाधिकारों की अवधारणा मुख्यतः द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उस समय उभरी जब इसकी समस्या सम्पूर्ण विश्व के लिये चिन्ता का विषय बनकर उभरी न्यूरमबर्ग मुकदमें (1946) के दौरान जर्मनी के नाजियों पर युद्ध अपराध के अलावा, मानवता के विरूद्ध अपराध के लिए भी मुकदमें चलाये गये। इन मुकदमों के अभियुक्तों ने अपने देश के यहूदियों पर जो बर्बरतापूर्ण अत्याचार किये थे उन्हें मानवता के विरूद्ध अपराध माना गया। इस कार्यवाही के समय यह मान्यता जुड़ी हुई थी कि मानवाधिकार अपने आप में मान्य है, यह किसी राष्ट्र के कानून के ऊपर है। इसी आधार पर 10 दिसम्बर 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने मानवाधिकारों की विश्वजनीय घोषणा जारी की। इस संगठन ने अपने सदस्य राष्ट्रों से आग्रह किया कि चाहे उनकी राजनीतिक स्थिति कैसी भी क्यों न हो वे अपने–अपने देश में विशेषतः स्कूलों और अन्य शिक्षण संस्थाओं में इसका प्रदर्शन और प्रचार करें। वास्तव में यह घोषणा एक स्वतन्त्र, लोकतान्त्रिक और कल्याणकारी राज्य के लिये उपयुक्त है और मानवाधिकारों की विस्तृत योजना प्रस्तुत करती है।

थामस जैफरसन ने लिखा है, "स्वभायवतया सब मनुष्य समान रूप से उन्मुक्त तथा स्वाधीन हैं और उनके कुछ जन्मजात अधिकार हैं जिन्हें मनुष्य स्वयं अपने जीवन तथा अपनी सन्तानों से पृथक नहीं कर सकते तथा जीवन और स्वतन्त्रता के अधिकारों का उपयोग, सम्पत्ति के अर्जन और सुखी जीवन के साधन के अधिकार।" प्रकृति द्वारा मनुष्य को जन्म से कुछ शक्तियाँ प्रदान की गयी है जिनका उपयोग वह स्वयं अपने और समाज के हित में उचित रूप से करता है। इन्हीं शक्तियों के सकारात्मक प्रयोग को हम मानव के अधिकार के रूप में जानते हैं। मानवाधिकारों का सृजन भी समाज में ही होता है। सामान्यतया मानवाधिकार से तात्पर्य है लिंग, धर्म, जाति, सम्प्रदाय, देश, आर्थिक स्थिति जैसे भेदभाव मूलक विचारों को त्याग करे मानव को

अनुरूपी लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

समुचित विकास, संरक्षण तथा ससम्मान जीवन जीने का वह अधिकार प्रदान करना जो उसे जन्म के साथ ही प्राप्त हो जाता है। हमारे संविधान में नीति निर्देशक सिद्धान्तों तथा मौलिक अधिकारों को इसी भावना को ध्यान में रखते हुए स्थान दिया गया है।

वस्तुतः मानवाधिकार की अवधारणा का इतिहास बहुत पुराना है। मानवाधिकार संरक्षण की जड़े बेबीलोनियन विधियों (1792–1750 ई०पू०), असीरिसन विधियों (1115–1077 ई०पू०) में खोजी जा सकती है। प्राचीन भारत भी इससे अछूता नहीं था। वेदकाल के धर्म (1500–500 ई०पू०) भी मानवाधिकारों को वाक् स्वतन्त्रता, विधि के समक्ष समानता, मताधिकार, सार्वजनिक पदों पर चुने जाने का अधिकार, व्यापार का अधिकार, न्याय प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया है। मानवाधिकार की अवधारणा के विषय में गीता में कहा गया है कि मनुष्य की दो श्रेणियाँ होती है। मनुष्य उत्थान की ओर बढ़ता है अर्थात उन्नतिशील होता है, तब वह दैवी श्रेणी में आता है और जब वह विघटित होने लगता है तब वह आसुरी श्रेणी में गिना जाने लगता है।

मानवाधिकारों के प्रति जागृति लाने के लिए सैन फ्रासिस्को में 26 जून 1945 को संयुक्त राष्ट्र चार्टर की धारा 68 के अन्तर्गत मानवाधिकारों को प्रोत्साहित करने के लिए एक आयोग के गठन का प्रस्ताव पारित किया गया। 10 दिसम्बर, 1948 को अमेरिका के फ्रैंकलिन रूजवेल्ट तथा लेबनान के डॉ० चार्ल्स के योगदान से एक प्रस्ताव तैयार किया गया, जिसे आज हम मानवाधिकार घोषणापत्र के नाम से जानते हैं। यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ। इसमें विश्व के सभी नागरिकों के मूलभूत अधिकारों से सम्बन्धित तीस धाराए जोड़ी गयी है। इसमें स्पष्ट किया गया कि विश्व के सभी मनुष्य चाहे वे किसी भी राष्ट्र, वर्ग, जाति, धर्म, लिंग के हों, समान है और सबके मानवाधिकारों की रक्षा की जायेगी। मानवाधिकारों के निरूपण की दिशा में यह एक महत्त्वपूर्ण कदम था और मानवाधिकार की परिभाषा की प्रक्रिया में 1948 की घोषणा को वास्तविक मैग्नाकार्टा माना जा सकता है। यह भी एक संयोग है कि संयुक्त राष्ट्र में जब मानवाधिकारों की चर्चा हो रही थी उसी समय भारत के संविधान का प्रणयन हो रहा था। हमारे संविधान निर्माता इस तथ्य से पूरी तरह वाकिफ थे और अपने देश के नागरिकों के लिए ऐसी ही व्यवस्था के लिए प्रयत्नशील थे। परिणामस्वरूप भारतीय संविधान में मानवाधिकारों को उच्च स्थान देते हुए उसे मौलिक अधिकारों के खण्ड में न केवल स्थान दिया गया बल्कि इसकी रक्षा की जिम्मेदारी न्यायपालिका को सौंपकर इसे गारटीकृत भी किया गया।

वर्तमान युग में संगठित रूप से भारत में नागरिक अधिकार आन्दोलन की शुरूआत 1936 में सिविल लिबर्टीज यूनियन के गठन के साथ हुआ। इनके गठन में जवाहर लाल नेहरू की मुख्य भूमिका थी। स्वतन्त्रता के बाद इन यूनियन की सक्रियता कम हो गयी। सम्भवतः यह माना गया कि भारत में लोकतान्त्रिक व्यवस्था वाले संविधान के लागू होने के बाद इनकी आवश्यकता नहीं रही। संयुक्त राष्ट्रसंघ के मानवाधिकार घोषणा पत्र पर भारत ने 1948 में हस्ताक्षर किया था। यद्यपि लगभग एक वर्ष पूर्व निर्मित भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों के माध्यम से मानवाधिकारों को मान्यता दी जा चुकी थी।

भारत में लोकतान्त्रिक राजनीति सर्वप्रथम समाजवादी विचारधारा के प्रभाव में परिवर्तित हुई और बाद में मानवाधिकार की विचारधारा द्वारा। And later on by human rights ideology 1975.77 के दौरान आतापकाल ने नागरिक स्वतन्त्रता के महत्त्व को सामने ला दिया। अभिव्यक्ति और संगठन की स्वतन्त्रता को किसी भी कीमत पर सुरक्षित किया जाना चाहिए। वंचित लोगों जैसे दलित, पिछड़ों, किसानों और भूमिहीन मजदूरों के संघर्षो द्वारा यह अनुभव हुआ कि लोकतान्त्रिक अधिकार महत्त्वपूर्ण है, और यह भी कि नागरिक स्वतन्त्रता लोकतान्त्रिक अधिकारों से भिन्न थी। विभिन्न क्षेत्रीय स्तर के आन्दोलनों ने लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए चुनावी राजनीति को प्रभावति करना शुरू कर दिया। मानवाधिकार की अवधारणा जिसका अर्थ मानव गरिमा था, भारत में अब एक नया अर्थ लिए हुए है। दलितों, पिछड़ों, किसानों और महिलाओं के विभिन्न संघर्षों ने मानवाधिकार के अर्थ को विस्तृत कर दिया है, जिसने राजनीतिक मांगों को तथ्यपरक बना दिया है। यही वह चुनौती है जिसने राज्य को विवश कर दिया है कि वह मानवाधिकार को मुख्यधारा में स्वीकार करें।

मानवाधिकार 20वीं शताब्दी का नाम है जिसे हम पारम्परिक रूप से प्राकृतिक अधिकार के रूप में जानते हैं या दूसरे शब्दों में कहें तो मनुष्य के अधिकार के रूप में जानते है। प्राकृतिक अधिकारों को Deontological जीमवतल स्पष्ट करती है कि प्रत्येक मनुष्य को नैतिक अधिकार प्राप्त हैं, ऐसा इसलिए नहीं कि वह किसी नैतिक या विधिक व्यवस्था का सदस्य है अपितु इसलिए कि वह एक मनुष्य है। ये मनुष्य के जीवन के ऐसे मांग पर आधारित हैं, जिसमें मानव गरिमा को सम्मान एवं संरक्षण मिल सके। ये अधिकार इस अर्थ में प्राकृतिक हैं कि ये किसी संस्था या समझौते के पूर्ववर्ती है जो प्राकृतिक कानून पर आधारित हैं और जो किसी दैवीय इच्छा या किन्हीं आध्यात्मिक विचारों की देन हैं। या उन्हीं के द्वारा मान्यता प्राप्त है। तात्पर्य यह

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

है कि काण्ट प्रत्येक व्यक्ति की अधिकतम समान स्वतन्त्रता की वकालत करता है। काण्ट के इस सिद्धान्त ने 20वीं सदी को अत्यधिक प्रभावित किया तथा उससे भी अधिक महान् विचारक जॉन राल्स को गहरे रूप में प्रभावित किया। राल्स का न्याय सिद्धान्त वास्तव में दो सिद्धान्तों पर आधारित है–

1. प्रत्येक व्यक्ति को मूल सामाजिक एवं राजनीतिक संरचनाओं द्वारा प्रत्याभूति (ळनतंदजममक) अधिकारों और स्वतन्त्रता का समान अधिकार है, यदि स्वतन्त्रता अनियंत्रित होगी तो परस्पर टकाराव होगा और यदि नियंत्रित होगी तो अनिवार्यतः स्वतन्त्रता की सुरक्षा तक सीमित होगी।

2. दूसरे सिद्धान्त के दो भाग हैं –

(A) First part of the second principle is the difference principle, जो स्पष्ट करता है कि कुछ सामाजिक एवं आर्थिक विषमताएं विद्यमान हैं, फिर इनको समाज के अल्पतम लाभ प्राप्त व्यक्ति के लिए व्यवस्थित किया जा सकता है।

(B) The second part of the second principle is the 'equality of opportunity', जो स्पष्ट करता है कि अवसर के निष्पक्ष समानता की स्थिति के अन्तर्गत कार्य एवं पद के अवसर सबके लिए खुले हुए हैं।

इस प्रकार मौलिक संरचना सभी को स्वीकार्य होगी, चाहे वह सम्पन्न हो या विपन्न। संक्षेप में राल्स अपने न्याय सिद्धान्त में अपने पूर्ववर्ती उदारवादी विचारों को शामिल करता है और सामाजिक न्याय प्रदान करने में उनके द्वारा झेले गए संकेतों को दूर करता है।

राल्स के सिद्धान्त की रूपरेखा मानवाधिकार के विचारधारा में मुख्य रूप से सहयोगी है, क्योंकि ऐसी व्यवस्था के प्रति सम्मान की भावना प्रत्येक राजनैतिक व्यवस्था की एक अनिवार्य परिस्थिति है, चाहे वह लोकतान्त्रिक हो या तानाशाही। अधिकारों की यह विचारधारा किसी विस्तृत नैतिक सिद्धान्त पर निर्भर नहीं करती। जैसे कि मनुष्य नैतिक प्राणी है और समान महत्त्व रखता है; इसलिए अधिकार रखता है, इत्यादि। नैतिक कर्त्तव्य एवं दायित्व वास्तव में न्याय की सामान्य अवधारणा से निकलते हैं।

मानवाधिकार से सम्बन्धित आधारभूत विचार तथा इसकी पर्याप्त समझ और सिद्धान्त तथा संकल्पना के धरातल से जब हम व्यवहारिकता के वास्तविक धरातल पर आते हैं, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति द्वारा इसके अनुपालन और प्रयोग का सम्बन्ध जुड़ा हो तो वहाँ अनेक ऐसी चुनौतियों तथा समस्याओं को देखते हैं जहाँ मानवाधिकार तथा आधारभूत स्वतंत्रताऐं समाज के अधिकांश समुदाय और व्यक्तियों के लिए दूर की वस्तु नजर आती है। इन चुनौतियातथा समस्याओं पर जब हम सुक्ष्म दृष्टि डालें तो इसका एक प्रमुख कारण सामने आता है कि समाज के अधिकांश लोगों तथा समुदायों में मानवाधिकार तथा सम्बन्धित बातों का ज्ञान और समझ का न होना। यही वह कड़ी है जो मानवाधिकार तथा शिक्षा के अन्तर्निहित गहनतम सम्बन्ध को दर्शाती है, क्योंकि शिक्षा के द्वारा ही मानवाधिकार की गहन अन्तर्राष्ट्रीय समझ विकसित होती है, जिसके द्वारा विभिन्न समुदायों के बीच शान्ति, सहयोग और लोकतन्त्र को बढ़ावा मिलता है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के (अनु० 26) में कहा गया है कि "प्रत्येक को शिक्षा का अधिकार है। कम से कम प्राथमिक तथा मौलिक स्तरों पर शिक्षा निःशुल्क होगी। प्राथमिक शिक्षा आवश्यक होगी। शिक्षा उस दिशा को और निर्देशित होगी जिससे मानव व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो सके, मानवाधिकार और स्वतन्त्रताओं के प्रति सम्मान हो सके, सभी राष्ट्रों, प्रजातियों या धार्मिक समुदायों में मित्रता हो सके तथा शान्ति के रख–रखाव में संयुक्त राष्ट्र की गतिविधियों को आगे ले जाया जा सके।"

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ० शिवभानु सिंह समाज दर्शन का परिचय पृ० 285.
2. ए०पी० सिन्हा, ह्यूमन राईट्स फिलासफीकली, इंडियन जर्नल ऑफ इन्टरनेशनल लॉ, वाल्यूम–2, पृ० 140.
3. ओ०पी० गावा, समकालीन राजनैतिक सिद्धान्त–मानवाधिकारों की संकल्पना, पृ० 139–40.
4. संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की उद्देशिका।
5. रमेश चन्द्र गौतम एवं पृथ्वीपाल सिंह–भारत में मानवाधिकार, विश्वविद्यालय प्रकाशन, सागर पृ० 15.
6. डॉ० पुष्पलता तनेजा–मानवाधिकार और बालशोषण, साहित्यिक प्रकाशन दिल्ली, पृ० 11.
7. डॉ० नगेन्द्र सिंह, ह्यूमन राइट्स एण्ड इण्टरनेशनल को–आपरेशन, पृ० 15.
8. कान्त, नीरज, "मानवाधिकार एवं मूल्य शिक्षा" शोध अमृत, जून 2012.
9. गौतम, नीरज कुमार, "शिक्षा मानव विकास का आधार स्तंभ" कुरूक्षेत्र सितम्बर 2010.

*****